शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जून 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

नीतिकाव्य और कबीर

डॉ. हरिश्चन्द्र अग्रहरि
अतिथि विद्वान (हिन्दी)
शासकीय महाविद्यालय
जैतवारा, सतना, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

मनुष्य समाज को संस्कृति और सभ्यता के ऊंचे सोपान तक पंहुचाने में साहित्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण है मनुष्य की रागात्मक वृत्तियों का परिष्कार करना साहित्य का मुख्य उद्देश्य है। जब मनुष्य अपनी मानवोचित गुणों को त्याग कर अवनति के मार्ग के ओर बढ़ चलता है, तब साहित्य उसकी उंगली पकड़ कर उसे सन्मार्ग पर लाता है। साहित्य अपना यह कर्तव्य अहिंसक तरीके से पूर्ण करता है। संतों का नीतिकाव्य मनुष्य को आत्मावलोकन का अवसर उपलब्ध कराता है। आज सैकड़ों साल बाद भी संत वाणी मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में आने वाली समस्याओं को दूर करने में अपना योगदान दे रही है। इन संतों में कबीर वाणी अप्रतिम है। उनके शब्द सीधे हृदय पर असर करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में कबीर के नीतिकाव्य पर प्रकाश डाला गया है।

भूमिका

साहित्य के अर्थ में सारे जीवन के प्राणियों का, हमारे आसपास के पर्यावरण का यानि सम्पूर्ण चराचर का मंगल भाव है। लोकमंगल की दृष्टि से सृजित साहित्य शब्द अपने व्यापक अर्थों में उन सभी भावों को लेकर चलता है, जिसमें शाश्वत मूल्यों का तथा सामयिक मूल्यों का विकास हो। हमारी संस्कृति में मनुष्य के बेहतरीन जीवन की कल्पना की गई है। हम सभी मानव परस्पर मिल जुलकर रहें, साथ ही साथ एक ऐसे विकास की भूमिका में हों जो मनुष्य के अलावा अन्य प्राणियों को भी मांगलिक भावों से परिपूर्ण कर दे।

साहित्य में विभिन्न सामाजिक समस्याएं प्रतिबिंबित होती हैं। साहित्य अपने युग की कल्याणमय प्रवृत्तियों को जमीन की सीमा से ऊपर उठाकर उसे सार्थकता प्रदान करता है। व्यापक जीवन-दर्शन अनुभूति की गहनता, मानवीय विकास के प्रति अटूट आस्था, महान उद्देश्य से युक्त साहित्य निश्चय ही अपना शाश्वत मूल्य प्रतिबिम्बत करता है। सिद्धांत और नियम साहित्य में जीवन को नही बांध सकते हैं। साहित्य में इसीलिए साहित्यकार अपनी बात अपने पूर्ववर्ती साहित्य और लोक से लेकर हर युग में अपनी सार्थकता को प्रमाणित करने का सजीव और जीवंत प्रयास करता है।

साहित्यकार जिन नियमों या सार्थक उपदेशों को कल्याण की भूमिका में उठाता है उसे आलोचकों ने नीति का नाम दिया है। नीति का तात्पर्य उस मार्ग से है जिस पर चलकर हम किसी अन्य प्राणी का अहित किये बिना अपना हित साधन कर सकें। नीति में एक पक्ष मार्ग निर्धारण या चिंतन का है तो दूसरा आचरण अथवा अभ्यास का है। नीति का समावेश विज्ञान और कला दोनों में है। सफल जीवन की चिंतन प्रधान कला नीति ही है। जब हम अपने अनुभवों को शब्दों के

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जून 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

माध्यम से कलात्मक रूप देते हैं, तब सत्-साहित्य का सृजन होता है। नीति शास्त्र में शुद्ध सत्य, उचित और शुभ का विवेचन होता है। क्योंकि इन्ही का संबंध जीवन मूल्यों से है। 'आदमी ये करें, ये न करें, ऐसा सोचे वैसा न सोचे आदि-आदि चिंतन नीति शास्त्र का ही दस्तावेज है।'[1] मानव चिंतनशील प्राणी है। उसकी प्रगति की सार्थकता तभी मान्य है, जब उसकी करनी से किसी अन्य को नुकसान न पहुंचे। लोगों के सम्पूर्ण अभिष्ट को सिद्ध करने वाला साहित्य नीति शास्त्र ही है।

इमां ज्ञात्वा धर्म रतिरधर्मे विरतिर्भवति।[2]

अर्थात् नीति जान लेने से धर्म में रीति और अधर्म में विरति होती है।

राजबलि पाण्डेय के अनुसार 'नीति वह शास्त्र है जो शुद्ध अथवा अशुद्ध, सत्य या असत्य, उचित या अनुचित अथवा शुभ या अशुभ के आधार पर मानव चरित्र का विवेचन करता है।'[3]

नीति शब्द का अर्थ होता है 'ले जाना' या 'पथ प्रदर्शन करना'। अतः धात्वर्थ की दृष्टि से नीति वह है, जो 'ले जाय' या 'अग्रसर करे'। वैदिक वाड.मय से लेकर अद्यावधि नीति शब्द का प्रयोग अनवरत रूप से होता चला आ रहा है।[4] संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी में नीति शब्द अनेक अर्थो में प्रयुक्त होता रहा है। नीति का कार्य जीवन को सही मार्ग पर अग्रसर करना या आगे ले जाना है। यह आगे ले जाना केवल एक दिशा में न होकर अनेक दिशाओं में हो सकता है। स्थूल रूप से आध्यात्मिक, धार्मिक, मानसिक, भौतिक, सामाजिक, राजनीतिक, तथा आचरिक आदि दिशायें हो सकती हैं। मानव जीवन में इन सभी दिशाओं में आगे बढ़ना चाहता है। नीति का व्यापक अर्थ प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग है। इसलिए मनुष्य की सर्वोन्मुखी उन्नति की प्रदर्शिका ही नीति।[5] इस तरह नीति का व्यापक अर्थ हुआ जिसमें विश्व के सारे सत्यों, सारे शिवों और सारे सौन्दर्यो को समाहित करने की ताकत है।

"समाज को स्वस्थ एवं संतुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को, अर्थ, धर्म काम तथा मोक्ष की उचित रीति से प्राप्ति करने के लिए जिन विधि-निषेध मूलक सामाजिक, व्यवहारिक, आचरिक, धार्मिक तथा राजनीतिक आदि नियमों का विधान देशकाल और पात्र के संदर्भ में किया जाता है, उसे नीति शब्द से अभिहित किया गया है।"[6]

कबीर काव्य में नीतितत्व

मानव समाज की लघुतम इकाई है। समाज में रहकर उसे अनेक प्रकार के कार्य करते हुए अपने कर्तव्य पालन करने पड़ते है। उसके ये कर्तव्य जीवन के अनेक क्षेत्रों में फैले हुये होते है। यथा वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक एवं स्फुट नीति।

हिन्दी साहित्य में आरम्भ से ही अपने सृजन लेखन में रचनाकारों ने जीवन के विविध चित्रणों को चित्रित करते हुए मान्य सिद्धान्तों को काव्य रूप में प्रस्तुत किया है। जो आगे चलकर मानव जीवन कल्याणकारी भूमिका में है। प्रकृति और मनुष्य परस्पर पूरकता में रहे, जिससे एक संतुलन बना रहे। मानवीय कलह, सांस्कृतिक पतन, आचरण विहीनता, पद लिप्सा, अंहकार, हिंसा, असत्य, अशुचिता, आतंक, शोषण, पापाचार या अनाचार आदि की भूमिकाओं में हमारा प्राकृतिक प्रदूषण तो होता ही है, मानसिक दूषण भी पनपता है, जिससे बहुत सारी हानियाँ मानव और मानव समाज को फलतः सम्पूर्ण जगत को उठानी पड़ती हैं। सम्भवतः इन्हीं के कारण बहुत सारे भयानक रोग इस धरती पर

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जून 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

फैलते हैं। व्यक्ति दुराचरणों पर न चले, ऐसा विश्व की महान विभूतियों ने अपने लेखन और उपदेशों में व्यक्त किया है। अगर हमें अपने अस्तित्व की चिंता है तो उस प्रभुत्व पर पड़ने वाले प्रश्न चिन्ह् प्रभावों को कम करने के लिए हमें किसी भी भयानक आपदा से बचने के लिए मन, वचन, कर्म से अपनी अन्तःशक्ति का विकास करना पड़ेगा। तभी हम नीति समर्थक हो सकते हैं। इसीलिए साहित्यकारों ने इन नीतियों से मानवीय विकास की उच्चतम सीमा देखी है और प्रकृति पर्यावरण की रक्षा भी। बात चाहे व्यक्तिगत हो, पारिवारिक हो, सामाजिक हो या देशकाल की हो, राजनैतिक हो, आर्थिक हो या सांस्कृतिक हो। हमें हर क्षेत्र में अपनी नीतिगत सांसों से सारे संसार में प्राणदायनी संजीवनी का विकास करना होगा। जैसे व्यक्ति लिप्सा की बात करें तो मनुष्य अपनी यशो लिप्सा में मदान्ध हो जाये और वह अपने मानवोचित व्यवहार से किसी दूसरे को दुखी करें ऐसे में समझदार व्यक्ति (नीतिवान) समझ लेता है कि यह व्यक्ति लोभ का चश्मा पहने हुए है और इसका व्यक्तित्व अत्यन्त लघु है।

जे छोड़त कुल आपनो, ते पावत बहु खेद।
लखहु बंस तजि बांसुरिन, लहे लोह सौं छेद।।[7]

कबीर दास जी ने अपने साहित्य में बार-बार इन तथ्यों की ओर संकेत किये है। उनके काव्य में सभी तरह की नीतियाँ चित्रित है। उन्होंने मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन चक्र के प्रति नीतियों का गायन किया है। चंूकि वे कर्म योगी रहे है। संत और समाज सुधारक रहे है। इसीलिए कथनी-करनी की एकता यानी आप्त वचनों (नीति वाक्यों) का पालन यत्र-तत्र सर्वत्र हुआ है। उन्होनें मनुष्य देह को श्रेष्ठ कर्म माना है। वहीं उन्होंने मानव की इस नश्वरता पर भी अपनी बात कही है। उन्होनें कहा कि यह मानव देह नश्वर है इस पर अहंकार करना भले मानुस का काम नहीं -

कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
ना जाणीं कहाँ मारिसी, कै धरि कै परदेश।।[8]

इसी तरह उन्होंने व्यक्तिगत मनुष्य जन्म को दुर्लभ माना है। इसीलिए आपने जीवन की सार्थकता, सत्संगति, या सत्कर्मो में मानी है।

निषा जनम दुर्लभ है, देह न बारम्बार।
तरबर थैं फल फड़ि पह्या, बहुरि न लागै हार।।[9]

भक्त कवि रहीम ने मनुष्य को मीठी वाणी बोलने के लिए कहा है। आज इस जीवन जगत में मात्र अपशब्द बोलने के कारण ही जहाँ-तहाँ आंतकी कलह-संघर्ष पनपा हुआ है। संत कबीर कहते है कि हमें सामाजिक समरसता के लिए, सामाजिक उत्थान के लिए, व्यक्तिगत उन्नयन के लिए, अपना जीवन सफल बनाने के लिए, प्रकृति में खुशहाली लाने के लिए मधुर वचनों का प्रयोग करना चाहिए-

ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय।
अपना तन सीतल करै, औरन को सुख होय।।[10]

कबीरदास जीवन मुक्त सन्त कवि थे। सांसारिक भोग उनको छू तक नही पाये। वे गृहस्थ होते हुए भी अपने परिवार, धरती आदि के साथ संबंध निर्वाह करते हुए सांसारिक बंधनों, आसक्तियों से दूर रहे। उसका कारण है वे अपनी साधना के आत्म साक्षात्कार में अनुभव पा गये थे और उन्हें यह महसूस हुआ कि ये बंधन सिर्फ अस्थायी और आकस्मिक है। संसार में कोई भी अपना सगा साथी नही है। सभी सम्बन्ध स्वार्थपरता लिये हुए है। कुटुम्ब कारणि पाप कमावै तू जांणैं घर मेरा। ए सब मिले, आप स्वास्थ, इहां नहीं को तेरा।। यह मनुष्य सुख की खोज में यहाँ से वहाँ भटकता है। माया के जाल में फंसता जाता

है। कबीर दास जी बार-बार ऐसे मनुष्य को नीतिकाव्य के माध्यम से तत्व बोध कराते है।

झूठा लोग कहें घर मेरा।
जा घर माहें बोलै डोलै, सोई नहीं तन तेरा।
बहुत बंध्या परिवार, कुटुम्ब में, कोई नही किस केरा।।[11]

मनुष्य समाजिक प्राणी है। व्यक्ति के बिना समाज की कल्पना और समाज के बिना पूर्ण व्यक्ति की कल्पना असंभव है। नीति और समाज दोनो घनिष्ट रूप से संबंधित है। नीति उचित और अनुचित का ज्ञान कराती है और उचितानुचित का विचार समाज में ही होता हे। समाज का प्रयोजन मनुष्य की सामुदायिक उन्नति है। सामाजिक प्राणी के नाते समाज के प्रति उसके कुछ कर्तव्य हो जाते है।

कबीर मध्ययुग के युग दृष्टा सन्न्त कवि थे। कबीर के समय में समाज की दशा बड़ी सोचनीय थी। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अन्धकार, अस्त-व्यस्तता और विश्रृंखलता फैली हुयी थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों समाजों की धार्मिक एवं व्यवहारिक सभी बातों में आडम्बर बढ़ता जा रहा था। दोनों ही भ्रम और मिथ्यावाद के पुजारी होते जा रहे थे। धर्म के नाम पर समाज में अनेक कुप्रथायें फैल गयी थी। कबीर की विद्रोही आत्मा इन विकृतियों के प्रति तनिक भी धैर्य धारण न कर सकी और उन्होंने ऐसे लोगों की भरपूर खबर ली। उन्होंने जो भी कहा वह सार्वजनीन और सार्वकालिक है। अपने युग में फैली विषमताओं का उल्लेख करके उन्होंने उनसे बचने का संकेत किया है। समाज व्यक्तियों का समूह है। कबीर व्यक्ति की उन्नति में ही समाज की उन्नति समझते थे। इसलिए कुसंस्कार और आडम्बर में फंसे हुए लोगों पर ही वह चोट करते थे। 'बिन गुरू मिले न ज्ञान और न हो मानव का कल्याण।'[12] कबीर ने स्थान-स्थान पर गुरू की प्रशंसा की है। किन्तु गुरु के चुनाव में शिष्य को विशेष सावधानी से काम लेेना चाहिए, क्योंकि जहाँ सद्गुरु शिष्य को लक्ष्य तक पहुंचाने में समर्थ होता है। वहां अयोग्य गुरू शिष्य के जीवन को ही नष्ट कर देता है। अतः कबीर ने कहा है कि-

जा का गुरु अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधे अंधा ठेलिया, दुन्यू कूप पडंत।।[13]

कबीर ने गुरू शिष्य सम्बन्धी नीतियों का उल्लेख बड़े ही मनोयोग से किया है। कबीर ने समाज सुधार के लिए व्यक्ति का साधु वृत्ति का होना बतलाया है क्योंकि ऐसा व्यक्ति ही सूप के समान होता है जो तथ्यहीन तत्वों को त्यागकर सार तत्व को ग्रहण कर समाज उन्नति में सहयोगी होता है-

साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै, थोथा देह उड़ाय।।[14]

इसी तरह उन्होंने समाज उन्नति के लिए उन्होंने व्यक्ति का आचरण पक्षधर होने की बात कही है और यह आचरण उसे साधु संगति से प्राप्त होती है। सत् संगति वाला मनुष्य ही सत्पथ का निर्माण करता है और आगामी पीढ़ी को शत-शत् प्रेरणायें देता है-

निरमल बूंद अकास की, पड़ि गई भोमि विकार।
मूल बिनंठा मानवी, बिन संगति मठझार।।15

निष्कर्ष

इस प्रकार कबीर ने समाज के अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक व्यक्ति और उसके कर्तव्यों का निर्धारण सामाजिक नीति के अन्तर्गत किया है। मध्युगीन समाज जातिगत, धर्मगत एवं समाजगत भेदभावों से अभिशप्त था। हिन्दू, मुसलमान का भेदभाव, ऊँच-नीच की भावना, अन्त्यज और कुलीन का भेद आदि ऐसे तत्व है,

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जून 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

जो सामाजिक जीवन में विष के बीजों का वमन कर रहे थे। कबीरदास जी ने सुधारक, आलोचक के व्यक्तित्व से इन तत्वों को दूर करने का सफल प्रयास किया। क्षमा, त्याग, विश्वबन्धुत्व, विनय समता समदृष्टि आदि सामाजिक विश्वासों के द्वारा कबीर ने समाज को समुन्नत बनाने का प्रयत्न किया जिससे न सिर्फ समाज का आन्तरिक कलह मिटे बाहरी आतंक भी समाप्त हो। इसी तरह उन्होंने सदाचार के तहत् शाकाहार पद्धति को बढ़ावा दिया। निरामिष भोजन से ही मनुष्य के भीतर के भाव सामाजिक होते है और वह संवेदनशील होकर स्वयं का कल्याण तो करता ही है पर कल्याण में भी सहयोगी होता है। इसी तरह से उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में अपनी कविता के व्यवहार में नीतियों का वर्णन किया है। चाहे वह अपरिग्रह का क्षेत्र हो या सुचिता का या अचैर्य या संयम का। कुल मिलाकर कबीर काव्य में नीतियों का विस्तार समाज उत्थान का ही विस्तार है। आत्मसंतोष आज की परम आवश्यकता है। इसी में हम अपना जीवन निर्वाह कर सकते है और पर-कल्याण की भावना का भी लक्ष्य इसी में पूर्ण होगा -

साई इतना दीजिए, जामें कुटुम्ब समाय।
मै भी भूखा ना रहूं, साधु न भूखा जाय।।

संदर्भ ग्रन्थ

1 रीतिकालीन रीतिकाव्य में नीति तत्व, डॉ.नृत्य गोपाल, पृष्ठ 136
2 हिंदी नीति काव्य, भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ 4
3 हिंदी नीति काव्य का विकास, राजबलि पाण्डेय, पृष्ठ 1
4 कबीर साहित्य में नीति तत्व, श्रीमती उर्मिला मिश्रा, पृष्ठ 11
5 हिंदी शब्दसागर
6 हिंदी नीति काव्य, पृष्ठ 2
7 रीतिकालीन रीति काव्य में नीति तत्व, डॉ.नृत्य गोपाल, पृष्ठ 145
8 कबीर ग्रंथावली, 12/ 2
9 कबीर ग्रंथावली, 34/12
10 कबीर ग्रंथावली, 34/451
11 कबीर ग्रंथावली, 34/238
12 चिन्तक कबीर (डायरी लेख), डॉ.बारेलाल जैन, पृष्ठ 6
13 कबीर ग्रंथावली, श्यामसुन्दर दास, पृष्ठ 28
14 कबीर ग्रंथावली, श्यामसुन्दर दास, पृष्ठ 42
15 कबीर ग्रंथावली, श्यामसुन्दर दास, पृष्ठ 46